श्रृंखला – 4

शोधपरक् प्रगति विवरण –4

.....

(समय,काल और मेटाफिजिकल क्रम)

'मेटाफिजिकल' क्रम में किसी भी कार्य के सम्पादन या सम्पन्न होने में समय/काल की भी अह्म भूमिका होती है। कोई भी कार्य – चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक, उसे समयबद्ध होना चाहिए। कालखण्ड के चक्रीय क्रम में प्रकृति का हर क्रम सामान्यतः समय सापेक्ष होता है। जब वही क्रम समय निरपेक्ष होने लगता है तो उसे सामान्य क्रम में अप्राकृतिक भी कहा जा सकता है। इस क्रम का आधिक्य कभी – कभी विनाश का भी कारण बन जाता है। – इस व्यापक बिन्दु क्रम पर विज्ञजनों को नये सिरे से विचार करना चाहिए।

सामान्यतः यह देखा गया है कि – अधिकांश धर्मों में तीज/त्योहार का निश्चित तिथि/समय भी कभी – कभी परिवर्तनशील हो जाता है। जब कि समय/काल को किसी जीव के 'जन्म और मृत्यु' की तरह निश्चित होना चाहिए। यदि निश्चित क्रम में अनिश्चितता आने लगती है तो वह कहीं न कहीं इस बात का संकेत देने लगता है कि – उस कार्य प्रयोजन का सही समय/काल क्या है ? – यह सब भी इससे सम्बन्धित विज्ञजनों के लिए अतिविचारणीय है।

विविध कारण बिन्दु से उत्पन्न कोई भी कार्य के लिए समय/अन्तराल का रचनात्मक बिन्दु क्या होगा या क्या होना चाहिए – इसकी सूक्ष्मता को समझने से पूर्व समय/कालखण्ड आदि के विषय में सही ढंग/क्रम से जान – समझ लेना अतिआवश्यक है।

विषयवस्तु की गम्भीरता और अस्पष्टता को ध्यान में रखते हुए इस बात का पूर्णतः प्रतिकार नहीं किया जा सकता कि सृष्टि के सापेक्ष में जो कालखण्ड 'युग और महायुग' के रूप में पूर्व धार्मिक विद्वानों – लेखकों और विचारकों द्वारा व्याख्यायित है वह सृष्टि के मूलस्रोतों को किसी न किसी रूप में अवश्य जोड़ता है। सृष्टि के असंख्य स्रोतों को खोजने से पूर्व 'युग और महायुग' से जुड़े कालखण्डों के विषय से अवगत होना आवश्यक है। विषय की गम्भीरता और क्लिष्टता को देखते हुए सबसे पहले 'कालधारणा', 'काल की इकाइयां', 'पंचांग', 'संवत', 'वर्ष' और मास आदि पर विचार कर लेना आवश्यक है। इन बिन्दुओं को संक्षेप में निम्नक्रम में समझा जा सकता है –

1. कालधारणा – वैदिक सूक्त (ऋग्वेद और अथर्ववेद) और कतिपय विस्भयावह मन्त्रों के आधार पर काल की सम्भावित अवधारणा को निम्न क्रम में व्यक्त किया जा सकता है –

'काल सात रश्मियों वाले, सहस्र आंखों वाले, अजर और पर्याप्त बीज वाले अश्व को हांकता है; विज्ञ कवि लोग उस पर चढ़ते हैं; सभी भुवन उसके चक्र हैं; उसी ने सभी भुवनों को एक किया और उसी ने स्वयं सभी भुवनों की परिक्रमा की; पिता होकर वह सभी का पुत्र बना; उससे बढ़कर, सचमुच कोई अन्य तेज नहीं है; काल में मन है, काल में प्राण है, काल में नाम समाहित है; ये सभी जीव इसके आगमन से प्रसन्न होते हैं; काल ने प्रजा की उत्पत्ति की; आरम्भ में काल ने प्रजापति को उत्पन्न किया; स्वयम्भू कश्यप काल से उभरे और तप भी काल से निकले; काल पुत्र ने अतीत और भविष्य की उत्पत्ति की, काल से ऋचाएं और यजु उत्पन्न हुए; यह लोक और परमलोक, पुण्य लोक और पुण्य विधृतियां, इन सभी लोकों को ब्रह्मा द्वारा पूर्णतया जीतकर काल परमदेव की भांति चलता रहता है'।

'काल' की समुचित अभिव्यक्ति को लेकर वैदिक ग्रंथों और और ऋषि – मुनियों के साथ – साथ विविध क्षेत्र के विद्वानों में मत – मतान्तर दीखता है। उन वैचारिक मतैक्य को ध्यान में रखते हुए कतिपय सार्थक शोधपरक तथ्यों को यहां निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा रहा है –

1. शतपथब्राह्मण (1 / 7 / 3 / 3 और 2 / 4 / 2 / 4) में 'काल' का प्रयोग 'समय' के अर्थ में हुआ है।

2. छान्दोग्योपनिषद् (2 / 31 / 1) ने 'काल' का प्रयोग 'अन्त' होने के अर्थ में किया है।

3. बृहदारण्यकोपनिषद् (1 / 2 / 4) में एक उल्लेख (गार्ग्य और राजा अजातशत्रु के मध्य का संवाद) के अन्तर्गत आया है कि – ''प्राण (उच्छ्वास) काल के पूर्व उसे नहीं त्यागता' और 'काल के पूर्व मृत्यु उसके पास नहीं आती।' यहां काल एक निश्चित समय का सूचक है।

4. श्वेताश्वर उप0 (1 / 1 – 2) में 'काल' शब्द सृष्टि के कारण या मूल के अर्थ में आया है – 'कारण क्या है ? क्या यह ब्रह्म है ? हम कहां से उत्पन्न होते हैं ? हम किससे जीवित रहते हैं ? हम किस पर प्रतिष्ठित है ? (या हम कहां जा रहे है ?)..... काल या स्वभाव या आवश्यकता या संयोग या तत्व या योनि (प्रकृति) या पुरुष – यही विचारणीय है।

कतिपय ऋषियों ने स्वभाव को कारण माना है, तथा अन्य मोहित लोगों ने काल को इसका कारण माना है।'

5. माण्डूक्योपनिषद् का कथन है कि – ओंकार त्रिविधकाल (भूत, वर्तमान और भविष्य) से ऊपर है।'

6. मैत्री उपनिषद् (6 / 14 – 16) में काल पर एक लम्बी विवेचना निम्न क्रम में प्रस्तुत है–

'अन्न इस सम्पूर्ण संसार की योनि है, काल अन्न की योनि है; सूर्य काल की योनि है।'

'काल से सभी जीव उत्पन्न होते हैं, काल से ही वे वृद्धि प्राप्त करते हैं और काल में ही समाप्त हो जाते हैं; काल मूर्ति है और अमूर्तिमान है।'

इसी क्रम में इसने उद्घोषित किया है कि – 'ब्रह्म के वास्तव में दो रूप हैं – काल और अकाल। जो सूर्य के पूर्व है वह अकाल है अर्थात् कालरहित है (ब्रह्मरूप) और यह भागविहीन है। किन्तु जो सूर्य के साथ आरम्भित होता है वह काल है और उसके भाग भी है; वर्ष काल का वह रूप है जिसके भाग हैं।

यह सभी जीव वर्ष द्वारा उत्पन्न होते हैं, यह सब उत्पन्न जीव वर्ष द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वर्ष में ही उनका क्षय हो जाता है।

अतः वर्ष प्रजापति है, काल है, अन्न है, ब्रह्नीड (ब्रह्म का निवास) है और आत्मा है।'

इसी क्रम में ऐसा कहा गया है कि – 'काल सभी जीवों को महान आत्मा में पकाता है (पचाता है), किन्तु जो व्यक्ति उसे जानता है, जिसमें काल पचता है, वही वेदज्ञ है।'

(विशेष – मैत्री उप0 ने काल को दो अर्थों में प्रयुक्त किया है – सूर्य की गतियों पर निर्धारित काल तथा ब्रह्म के स्वरूप से सम्बन्धित काल।)

7. आदिपर्व (1 / 248 – 250) में आया है – 'काल भूतों (जीव – जन्तु) की सर्जना करता है, काल प्रजाओं (लोगों) का नाश करता है; प्रजा के संहार में संलग्न काल, काल को शमित करता है। काल शुभ और अशुभ स्थितियां उत्पन्न करता है; काल सबको समाप्त करता है और पुनः सबकी सृष्टि करता है, काल ही ऐसा है जो सबके सो जाने पर जागता रहता है, काल अजेय है।'

8. .... पातंजलि (पाणिनि – 2 / 2 / 5 का दूसरा वार्तिक) का कहना है – 'लोग उसको काल कहते हैं जिसके द्वारा कठोर वस्तुओं की वृद्धि और क्षय लक्षित होता है, और वही काल 'रात्रि और दिन' कहा जाता है जब कि वह क्रिया से संयुक्त हो जाता है। वह क्रिया 'आदित्य की गति' है।

9. मनुस्मृति (1 / 21) में परमात्मा को काल और उसके विभागों का सृष्टिकर्ता कहा गया है। परमात्मा विश्व सृष्टि के उपरान्त अपने में विलीन होता प्रदर्शित किया गया है, और बार – बार एक कालावधि को दूसरे कालावधि से चूसता या पीड़ित करता हुआ प्रकट किया गया है।

10. सांख्यकारिका (133) में काल के सम्बन्ध में 13 कारणों का उल्लेख है जिनमें 3 आभ्यन्तर और 10 बाह्य है। बाह्य कारणों का सम्बन्ध वर्तमान से दर्शित है और आभ्यन्तर का भूत, वर्तमान और भविष्य से।

11. न्यायसूत्र (2/1/39–43) ने काल को भूत, वर्तमान और भविष्य के रूप में देखा है।

12. रघुनाथ शिरोमणि ने 'पदार्थ निरुपण' में निरुपित किया है कि – दिक्, काल और परब्रह्म एक ही हैं, वे पृथक नहीं हैं।

13. योगसूत्रभाष्य (3 / 51) में काल के विषय में एक गूढ़ विवेचन निम्न क्रम में प्रस्तुत किया गया है –

'जिस प्रकार एक परमाणु द्रव्य है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म तक पहुंच सकता है, उसी प्रकार क्षण काल है जो परम अपकर्ष तक (सूक्ष्म से सूक्ष्म सीमा तक) पहुंच सकता है..... आदि आदि।'

14. बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी काल के विषय में विवेचन है।

इसमें यह प्रतिपादित है कि – काल कोई पृथक सत्ता नहीं है, यदि काल का कोई आरम्भ नहीं है और यह अनन्त है तो समय की दूरी और निकटता की धारणा नहीं हो सकती, दूरी सन्निकटता या क्षिप्रता उन क्रियाओं से भिन्न नहीं है जिनके विषय में वे पूर्व ज्ञान देती हैं।

बौद्ध मत भी कहता है कि काल कोई वस्तु नहीं है, यह विचार मात्र है, यह केवल मनुष्य के इन्द्रियज्ञान भण्डार और प्रज्ञा की स्वानुभूतिमय (आत्मगत) दशा है, यह अपने नास्तित्व का द्योतक है, यह कर्ता से भिन्न है।

(विशेष – यदि काल को पृथक सत्ता मान लिया जाय तो प्रश्न यह उठता है कि – इसका समन्वय अन्य 'जीव – निर्जीव ' से कैसे हो पायेगा। – यह अतिविचारणीय प्रश्न है।)

किन्तु जैन सिद्धान्त के अनुसार –छः पदार्थ हैं; यथा – जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल, अर्थात् काल पृथक सत्ता है।

15. कूर्मपुराण (1, अध्याय 5) में काल का सवरूप निम्न क्रम में प्रस्तुत किया गया है –

'यह पूजनीय काल अनन्त, अजर और अमर है। यह सर्वगत्व, स्वतन्त्रत्व, सर्वात्मत्व रूप से महेश्वर है। यों तो बहुत से ब्रह्मा, रुद्र, नारायण और अन्य देव हैं, किन्तु यह घोषित है कि एक ही भगवान काल हैं। देवकाल से ही सृष्टि है और पुनः काल द्वारा कवलित होते हैं। काल की शक्ति से ब्रह्मा, नारायण, ईश (शिव) प्राकृत लय को प्राप्त होते हैं, और पुनः काल के योग से उत्पन्न (अवतरित) होते हैं। इसी से परब्रह्म, प्रकृति, वासुदेव और शंकर की सृष्टि होती है। अतः विश्व कालात्मक है। वही अकेला परमेश्वर है।

वायु (32 / 29 – 30) और कूर्म (2 / 2 / 16) दोनों में आया है – 'काल जीवों की सर्जना और संहार करता है, सभी काल के वश में है, काल किसी अन्य के वश में नहीं है ।

16. सूर्यसिद्धान्त (ज्योतिष ग्रंथ) में आया है – 'काल लोकों का अन्त करने वाला है; दूसरा प्रकार कलनात्मक है, जिसमें गणना की जाती है।' काल के दो प्रकार हैं – स्थूल और सूक्ष्म, जिन्हें क्रमशः मूर्त और अमूर्त कहा जा सकता है। काल विभाजन प्राण (उच्छ्वास) आदि मूर्त है और त्रुटि आदि अमूर्त ।

17. चरकसंहिता (सूत्र स्थान – 1 / 480) ने काल को 9 द्रव्यों में रखा है और कहा है कि यह अचेतन है।

18. दार्शनिक वैयाकरणों में भर्तृहरि ने प्रकीर्णककाण्ड (काल समुद्देश; 1, 3, 32) में कहा है कि – काल एक द्रव्य है, विभु है, अन्य क्रियाओं से पृथक अनन्त सत्ता वाला है।

19. वाज0 संहिता (32 / 2) में आया है – 'सभी निमेष (पलक गिरने की अवधियां) परमपुरुष से उद्भूत हैं, वह पुरुष विद्युत के समान देदीप्यमान है।'

20. बृ0 उप0 (3 / 8 / 9) में आया है – 'अक्षर ब्रह्म के आधिपत्य में सूर्य और चन्द्र दूर – दूर स्थित हैं; इसी प्रकार निमेष, मुहूर्त, दिन – रात्रि, पक्ष, ऋतुएं, वर्ष आदि पृथक – पृथक हैं।'

2. काल की इकाइयां – महानारायण उप0 (1 / 8 – 9) में काल की इकाइयों को निम्न क्रम में व्यक्त किया है –

'निमेष, कलाएं, मुहूर्त, काष्ठाएं, अर्धमास, मास, ऋतुएं और वर्ष आदि'।

कतिपय धर्मशास्त्र के विद्वानों और ऋषि – मुनियों ने इन इकाइयों को निम्न क्रम में व्यक्त किया है –

1. मनु (1 / 64) में आया है कि – ' 18 निमेष = 1 काष्ठा, 30 काष्ठा =1 कला, 30 कला =1 मुहूर्त, 30 मुहूर्त =1 अहोरात्र (रात दिन)।'

2. वराहमिहिर की बृहत्संहिता (2, पृ0 22) और प्रशस्तपाद (वैशेषिक सूत्र, 2 / 2 / 46) के भाष्य में काल विभाजन निम्न क्रम में है –

'क्षण, लव, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, याम (प्रहर या दिन का 1 / 8 भाग), अहोरात्र, अर्धमास, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर (वर्ष), युग, मन्वन्तर, कल्प, प्रलय और महाप्रलय आदि।'

काल की इकाइयों की संख्या, नाम और समय के विषय में मतैक्य नहीं है। इसे निम्नक्रम में समझा जा सकता है –

(यथा – 1. मनु (1/64) के अनुसार – 18 निमेष = 1 काष्ठा; 30 काष्ठा = 1 कला; 30 कला = 1 मुहूर्त; 30 मुहूर्त = 1 अहोरात्र। / 2. कौटिल्य (अर्थशास्त्र 2, अध्याय 20, पृ0 107 – 108)के अनुसार – 2 त्रुट = 1 लव, 2 लव = 1 निमेष, 5 निमेष = 1 काष्ठा,

30 काष्ठा = 1 कला, 40 कला = 1 नाड़िका, 2 नाड़िका = 1 मुहूर्त, 30 मुहूर्त = 1 अहोरात्र। / 3.वायु (50 / 169, 57 / 7), मत्स्य (142 / 4), विष्णु (2 / 8 / 59), ब्रह्माण्ड (2 / 29 / 6), शान्ति0 (232 / 12) के अनुसार – 15 निमेष = 1 काष्ठा, 30 काष्ठा = 1 कला, 40 कला = 1 नाड़िका, 2 नाड़िका = 1 मुहूर्त, 30 मुहूर्त = 1अहो0 / 4. अमरकोश के अनुसार – 18 निमेष = 1 काष्ठा, 30 काष्ठा = 1 कला, 30 कला = 1 क्षण, 12 क्षण = 1मुहूर्त, 30 मुहूर्त = 1 अहोरात्र, / 5. भागवत (3 / 11 / 3–10) के अनुसार – 2 परमाणु = 1 अणु, 3 अणु = त्रसरेणु, 3 त्रसरेणु =1 त्रुटि, 100 त्रुटि = वैध, 3 वैध = 1 लव, 3 लव =1 निमेष, 3 निमेष =1क्षण, 5क्षण =1काष्ठा, 15काष्ठा = 1लघु, 15लघु =1नाड़िका, 2 नाड़िका = 1 मुहूर्त, 30 मुहूर्त = 1 अहोरात्रं। / 6. आथर्वण ज्योतिष के अनुसार – 12 निमेष = 1 लव, 30लव = 1 कला, 30 कला = 1 त्रुटि, 30 त्रुटि = 1 मुहूर्त ।)

उपरोक्त क्रम में अहोरात्र तक का विस्तृत उल्लेख है। काल सम्बन्धी इकाइयों के आगामिक क्रम को निम्न क्रम में प्रस्तुत किया जा सकता है –

'युग' को 'ऋग्वेद' (3 / 55 / 18) में 5 वर्ष की अवधि के रूप में लिया गया है। इसमें 5 वर्ष की इकाइयों की ओर गूढ़ संकेत है।

ऋग्वेद(1 / 110 / 4; 1 / 140 / 2; 1 / 161 / 13; 1 / 164 / 44; 7 / 103 / 1, 7, 9; 10 / 190 / 2) में संवत्सर का अर्थ है – एक वर्ष । ऋग्वेद (10 / 62 / 2) में 'परिवत्सर' शब्द आया है। जिस प्रकार ऋग्वेद में 'युग' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, उसी प्रकार यह सम्भव है कि 'संवत्सर' और 'परिवत्सर' शब्द केवल एक वर्ष के अर्थ में या पांच वर्षों के वृत्त के अर्थ में प्रयुक्त हुए हों।

तै0 सं0 (5 / 5 / 7 / 1 – 3) में संवत्सर के साथ रुद्र को नमस्कार किया गया है; दाहिने, पीछे, उत्तर और ऊपर क्रम से परिवत्सर, इदावत्सर, इदुवत्सर और वत्सर के साथ रुद्र को नमस्कार अर्पित किया गया है। तै0 ब्रा0 (1 / 4 / 10 / 1) में अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा और वायु आदि क्रमिक रूप से संवत्सर, परिसंवत्सर, इदावत्सर और अनुवत्सर कहे गये हैं; वहां वर्षों के चार नामों का चार चातुर्मास्यों से सम्बन्ध जोड़ा गया है; यथा – वैश्वदेव, वरुण प्रवास, साकमेष और शुनासीरीय।

कौटिल्य ने पंचसंवत्सर युग का उल्लेख किया है और साथ ही साथ अढ़ाई वर्ष और पांच वर्ष के अन्त के दो मलमासों को उसमें रखा हैं।

महाभारत में भी पंचवर्षीय युग का उल्लेख है (सभापर्व – 11 / 38)। उसमें युग को सूर्य और चन्द्र का पंचवर्ष माना है और कहा है कि 30 मासों के उपरान्त एक मलमास जुड़ता है।

अथर्ववेद (5 / 14 / 4) में आया है कि संवत्सर में 12 अर हैं और मासों में 30।

ब्राह्मण ग्रंथों में भी वर्ष में 360 दिन और 720 अहोरात्र कहा गया है(शतपथ ब्रा0 –9 / 1 / 1 / 43 और –ऐत0 ब्रा0 – 7 / 7)।

वैदिक संहिताओं और ब्राह्मण ग्रंथों में 13 वें मास (अधिक मास या मलमास) की चर्चा की गयी है (तै0 सं0 – 4 / 6 / 7 / 1 – 2 और कौषीतकि ब्रा0 – 19 / 2)।

तै0 सं0 (1 / 14 / 4, 6 / 5 / 3 / 4) ने स्पष्ट रूप से 13 वें मास (संसर्प या अंहस्पत्य) का उल्लेख किया है। (वाज0 सं0 7 / 30 और 22 / 3 : अंहस्पत्य; मैत्रायणी सं0 3 / 12 / 13 : संसर्प)।

कौषीतकि ब्रा0 (5 / 8) ने 13 वें मास को शुनासीरीय यज्ञ से सम्बन्धित माना है।

मैत्रायणी सं0 (1 / 10 / 8) ने 'ऋतुयाजी' और 'चातुर्मास्य याजी' के अन्तर को लक्षित किया है। इसे निम्न क्रम में समझा जा सकता है –

1. ऋतुयाजी – वह यह समझकर यज्ञ करता है कि 'अब वसन्त आ गया है, वर्षारम्भ हो गया है, शरद् का आगमन हुआ है'।

2. चातुर्मास्य याजी – वह है जो 13 वें मास को ध्यान में रखकर यज्ञ करता है।

ऋग्वेदीय भारतीयों को वह वर्ष ज्ञात था जिसमें एक मास (मलमास) जुड़ता था। अतः उन दिनों दो पंचांगों की बात ज्ञात थी। इसे निम्नक्रम में समझा जा सकता है–

1. धार्मिक कृत्यों के लिए 360 दिनों (12 मास) का वर्ष होता था।

2. इसमें एक मास और जुड़ता था, जिससे वर्ष के क्रम को भलीभांति जाना जा सके। यह अतिरिक्त एक मास लगभग 30 मास के उपरान्त जुड़ता है।

शतपथ ब्राह्मण (2 / 1 / 3 / 1) में सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन की गतियों का उल्लेख है। छः मासों तक उत्तर तथा छः मासों तक दक्षिण में सूर्य की गतियां बृ0 उप0 (6 / 2 / 15 – 16) में भी उल्लिखित हैं।

वसन्त और ग्रीष्म उत्तरायण के प्रमुख भाग हैं, अतः इनके अनुषंग में तथा समनुरूपता की दृष्टि से वर्षा ऋतु भी देवों की पूजा के लिए है।

वसन्त (ऋ0 10 / 161 / 4, 10 / 90 / 6), ग्रीष्म (10 / 90 / 6), प्रावृट् (7 / 103 / 3 और 9), शरद् (25 बार, 2 / 12 / 11, 7 / 66 / 11, 10 / 161 / 4 आदि), हेमन्त (10 / 161 / 4) आदि पांच ऋतुओं का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है, किन्तु 'शिशिर' का उल्लेख उसमें स्पष्ट रूप से नहीं है। अथर्ववेद (6 / 55 / 2) में 'ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद्वर्षाः स्विते नो दधात' – छः ऋतुओं के नाम आये हैं किन्तु क्रम से नहीं। इसी (अथ0 6 / 61 / 2) में सातवें ऋतु 'मलमास' का भी उल्लेख है।

अन्ततः शतपथ ब्राह्मण (2 / 1 / 3 / 16) ने संवत्सर में छः ऋतुओं को महत्व दिया है। शत0 ब्रा0 (2 / 1 / 3 / 1 – 5) ने वसन्त और ग्रीष्म को देवों की, शरद्, हेमन्त और शिशिर को पितरों की ऋतुओं के रूप में वर्णित किया है। इसी क्रम में मास का शुक्ल पक्ष, दिन और पूर्वान्ह् देवों के लिए तथा कृष्ण पक्ष, रात्रि और अपरान्ह् पितरों के लिए मान्य ठहराया है।

पंचांग के पांच अंगों में एक अंग है – योग। यह सूर्य और चन्द्र के रेखांशों के योग से (या यह वह काल है जिसमें सूर्य और चन्द्र देश के 13 अंश और 20 कलापूर्ण करते हैं) माना जाता है। जब योग 13.20 अंशों का होता है उस समय विष्कम्भ योग का अन्त होता है; जब वह 26.40 अंशों का होता है, तो प्रीति योग का अन्त होता है। योग 27 है और 360 अंश बनाते हैं। रत्नमाला (4 / 1 – 3) में निम्न प्रकार के योग हैं –

क्रम संख्या	नाम	छेवता	क्रम संख्या	नाम	छेवता
1.	विष्कम्भ	यम	15.	वज्र	वरुण
2.	प्रीति	विष्णु	16.	सिद्धि	गणेश
3.	आयुष्मान	चन्द्र	17.	व्यतीपात	शिव
4.	सौभाग्य	ब्रह्मा	18.	वरीयान	कुबेर
5.	शोभन	बृहस्पति	19.	परिधि	विश्वकर्मा
6.	अतिगण्ड	चन्द्र	20.	शिव	मित्र
7.	सुकर्मा	इन्द्र	21.	सिद्ध	कार्तिकेय
8.	धृति	आपः	22.	साध्य	सावित्री
9.	शूल	सर्प	23.	शुभ	कमला
10.	गण्ड	अग्नि	24.	शुक्ल	गौरी
11.	वृद्धि	सूर्य	25..	ब्रह्म	अश्विनी
12.	ध्रुव	पृथिवी	26.	ऐन्द्र	पितरगण
13.	व्याघात	पवन	27.	वैधृति	अदिति
14.	हर्षण	रुद्र			

उपरोक्त को नित्य योग कहा जाता है। मुहूर्त दर्शन (2 / 16) के मत से इन 27 योगों में 9 निन्द्य हैं; (यथा – परिध, व्यतीपात, वज्र, व्याघात, वैधृति, विष्कम्भ, शूल, गण्ड और अतिगण्ड)। 'रत्नमाला' में कहा गया है कि व्यतीपात और वैधृति पूर्णरूपेण अशुभ है, परिध का पूर्वाद्ध और अशुभ नाम वाले योगों का प्रथम पाद अशुभ है; सभी शुभ कृत्यों में विष्कम्भ और वज्र की तीन घटिकाएं, व्याघात की 9, मूल की 5, गण्ड और अतिगण्ड की 6 घटिकाएं वर्जित हैं।

याज्ञ0 (1 / 218) में व्यतीपात योग का उल्लेख है। हर्षचरित (उच्छवास – 4) में वाण ने कहा है कि जब हर्ष का जन्म हुआ तब व्यतीपात जैसे दोषों से दिन रहित था।

सामान्यतः वर्ष में 13 (कभी – कभी 14) व्यतीपात योग होते हैं और 96 श्राद्धों में 13 व्यतीपाती के श्राद्ध सम्मिलित हैं।

उपरोक्त 27 योगों के अतिरिक्त कुछ और भी योग हैं जो किन्हीं तिथियों के साथ किन्हीं सप्ताह दिनों के संयुक्त होने से उत्पन्न होते हैं या कि जब कोई ग्रह किन्हीं विशिष्ट राशियों में किन्हीं विशिष्ट तिथियों या नक्षत्रों में बैठ जाते हैं।

कपिलाषष्ठी और अर्थोदय इसी प्रकार के योग हैं।

व्यतीपात, जो 27 योगों में 17 वां है, निम्न दो अर्थों में प्रयुक्त होता है –

1. जब अमावस्या रविवार को पड़ती है और चन्द्र, श्रवण, अश्विनी, घनिष्ठा, आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्रों में किसी के प्रथम पाद में रहता है।

2. जब शुक्ल पक्ष की द्वादशी को बृहस्पति और मंगल सिंह राशि में हो, सूर्य मेष में और जब वह हो तिथि हस्त नक्षत्र में हो।

(विशेष – 1. इन दोनों को कभी – कभी महाव्यतीपात कहते हैं।

विशेष – 2. इन दोनों पर दान करने की व्यवस्था दी गई है।)

इन 27 योगों के अतिरिक्त बहुत से योगों का उल्लेख पंचांगों में होता है; (यथा – अमृतसिद्धि, यमघण्ट, दग्धयोग, मृत्युयोग, धवाण आदि)।

पंचांग का पांचवां अंग है – करण। तिथि का अर्द्ध करण होता है, अतः एक तिथि में दो करण तथा चान्द्र मास में 60 करण होते हैं। करण के दो प्रकार हैं – चर और स्थिर। बृ0 सं0 (99 / 1 – 2) में देवता – नाम के साथ 7 चर करण निम्न है –

1. भव – इन्द्र, / 2. बालव – ब्रह्मा,/ 3. कौलव – मित्र,/ 4. तैतिल – अर्यमा, /5. गर (या गज) – पृथिवी,/ 6. वणिज – श्रीं, / 7. विष्टि – यम।

देवता – नाम के साथ चार स्थिर करण निम्न हैं –

1. शकुनि – कलि, /2. चतुष्पाद – वृष, /3. नाग – सर्प,/ 4. किंस्तुघ्न – वायु।

'करण' शब्द 'कृ' धातु से बना है, यह तिथि को दो भागों में करता है, अतः यह 'करण' कहा गया है।

बहुत से करणों के नाम विचित्र हैं, उनके अर्थ का बोध नहीं हो पाता।

धर्मशास्त्र के मध्यकाल के लेखकों के मन में विष्टि नामक सातवें करण ने दारुण भय उत्पन्न कर दिया है। यह द्रष्टव्य है कि यदि चन्द्रमास की तिथियों को 60 भागों में बांटा

जाय और अमान्त मास की प्रतिपदा के दूसरे अर्ध में बव का आरम्भ हो तो विष्टि एक मास में आठ बार आयेगी, जैसा कि निम्न तालिका में व्यक्त है –

करण	1	2	3	4	5	6	7	8
बव	2	9	16	23	30	37	44	51
बालव	3	10	17	24	31	38	45	52
कौलव	4	11	18	25	32	39	46	53
तैतिल	5	12	19	26	33	40	47	54
गर	6	13	20	27	34	41	48	55
वणिज	7	14	21	28	35	42	49	56
विष्टि	8	15	22	29	36	43	50	57

इनमें स्थिर करण होंगे – शकुनि –58, चतुष्पाद – 59, नाग – 60 और किंस्तुम्न – 1 (आगे के मास के प्रथम पक्ष की प्रतिपदा)।

करणों के विषय में, विशेषतः विष्टि के विषय में (जो मास में आठ बार होती है) जो कहा गया है कि यह भुजंग के आकार की है, दारुण है, आदि।

आधुनिक काल में ज्योतिषियों के मुख्यतः तीन सम्प्रदाय हैं – 1. सौर सिद्धान्त (सौर पक्ष) का सम्प्रदाय, 2. ब्रह्म सिद्धान्त (ब्राह्म पक्ष) का सिद्धान्त, 3. आर्य सिद्धान्त (आर्यपक्ष) का सिद्धान्त। इन सब के अन्तर में निम्न दो बातें प्रमुख हैं –

1. वर्ष का मान (विस्तार), और 2. महायुग जैसी किसी विशिष्ट कालावधि में सूर्य, चन्द्र और ग्रहों के भ्रमणों की संख्या। वर्ष के विस्तार का अन्तर इन सिद्धान्तों में बहुत अल्प है; यथा – कुछ विपल।

(विशेष – 1. एक विपल – 1 / 60 पल, एक पल – 1 / 60 घटिका, एक घटिका – 24 मिनट।

विशेष – 2. सूर्य सिद्धान्त के अनुसार – वर्ष विस्तार में 365 दिन, 15 घटिकाएं और 31.523 पल हैं, किन्तु वासन्तिक विषुव तक सूर्य के दोनों अयनों के बीच की अवधि है – 365 दिन, 14 घटिकाएं और 31.972 पल तथा नाक्षत्र वर्ष में 365 दिन, 15 घटिकाएं, 22 पल और 53 विपल पाये जाते हैं।)

सन् 1952 (नवम्बर) में शासन की ओर से डा0 मेघनाथ साहा की अध्यक्षता में 'पंचांग सुधार समिति' बनीं, जिस पर सारे भारत के लिए एक पंचांग बनाने का भार सौंपा गया।

उस समिति ने नवम्बर 1955 में अपना निष्कर्ष उपस्थित किया। वह निष्कर्ष लोक पंचांग और धार्मिक पंचांग रिपोर्ट (पृ0 6 – 8) में अंकित है।

स्वतन्त्र भारत के प्रशासन द्वारा सबके लिए समान पंचांग की व्यवस्था की जानी चाहिए।

लोक पंचांग के लिए समिति द्वारा निम्न निष्कर्ष दिये गये हैं –

1. शक संवत् का प्रयोग होना चाहिए (शक संवत् 1886 सन् 1964 – 65 ई0 के बराबर है)।

2. वर्ष का आरम्भ वासन्तिक विषुप के अगले दिन से होना चाहिए।

3. सामान्य वर्ष में 365 दिन हों, किन्तु प्लुत (लीप) वर्ष में 366 दिन हों। शक संवत् में 78 जोड़ने पर यदि 4 से भाग लग जाय तब वह प्लुत वर्ष माना जायेगा। किन्तु जब योग में 100 का भाग लग जाय तो जब उसमें 400 से भाग लगेगा तभी प्लुत वर्ष माना जायेगा, अन्यथा वह सामान्य वर्ष ही समझा जायेगा।

4. चैत्र (या छैत्र) वर्ष का प्रथम मास होगा और मासों के दिन निम्न प्रकार से होंगे –

क्रम संख्या	मास का नाम	थ्दन	क्रम संख्या	मास का नाम	थ्दन
1.	चैत्र	30 दिन (या 31 दिन–प्लुत वर्ष)	7.	आश्विन	30 दिन
2.	वैशाख	31 दिन	8.	कार्तिक	30 दिन
3.	ज्येष्ठ	31 दिन	9.	मार्गशीर्ष	30 दिन
4.	आषाढ़	31 दिन	10.	पौष	30 दिन
5.	श्रावण	31 दिन	11.	माघ	30 दिन
6.	भाद्रपक्ष	31 दिन	12.	फाल्गुन	30 दिन

संशोधित भारतीय पंचांग के दिनांक ग्रेगांरी पंचांग के दिनांकों की संगति में है। दिनांकों का क्रम निम्न प्रकार है –

क्रम संख्या	भारतीय पंचांग	ग्रेगांरी पंचांग	क्रम संख्या	भारतीय पंचांग	ग्रेगांरी पंचांग
1.	चैत्र – 1	मार्च–22 / 21 (सामान्य / लीपवर्ष)	7.	आश्विन	सितम्बर – 23
2.	वैशाख – 1	अप्रैल – 21	8.	कार्तिक	अक्टूबर – 23
3.	ज्येष्ठ – 1	मई – 22	9.	मार्गशीर्ष	नवम्बर – 22
4.	आषाढ़ – 1	जून – 22	10.	पौष	दिसम्बर – 22
5.	श्रावण – 1	जुलाई – 23	11.	माघ	जनवरी – 21
6.	भाद्रपक्ष – 1	अगस्त – 23	12.	फाल्गुन	फरवरी – 20

संशोधित पंचांग के अनुसार – भारतीय ऋतुक्रम निम्न होगा –

क्रम संख्या	भारतीय ऋतु	ऋतु मास	क्रम संख्या	भारतीय ऋतु	ऋतु मास
1.	ग्रीष्म	वैषाख और ज्येष्ठ	4.	हेमन्त	कार्तिकऔरमार्गशीर्ष
2.	वर्षा	आषाढ़और श्रावण	5.	शिशिर	पौष और माघ
3.	शरद्	भाद्रपदऔरआश्विन	6.	वसन्त	फाल्गुन और चैत्र

धर्मिक पंचांग के विषय में निम्नांकित निष्कर्ष है –

1. सौर मासों की गणना, जो उसी नाम वाले मासों की जानकारी के लिए आवश्यक है, वासन्तिक विषुप से 23 अंश और 15 कल्प (निश्चित अयनांश) पहले ही की जायेगी।

इस प्रकार मासों का आरम्भ निम्न रूप से होगा – सौर वैसाख सूर्य के 23^0 15 ′ रेखांश से आरम्भ होगा, सौर ज्येष्ठ और चैत्र तक अन्य सौर मास क्रम से निम्न होंगे–

′53^0 15′, 83^0 15′, 113^0 15′, 143^0 15′, 173^0 15′, 203^0 15′, 233^0 15′, 263^0 15′, 393^0 15′, 323^0 15′, 353^0 15′,।

यह केवल समझौता मात्र है, जिससे परम्परा अचानक उखड़ न जाय। इससे अतिपूर्व (कालिदास और वराहमिहिर का समय काल) और वर्तमान काल की ऋतुओं में समानता नहीं पायी जा सकेगी।

2. धार्मिक उपयोगों के लिए चान्द्र मास प्रतिपदा से आरम्भ होंगे और उस सौर मास के, जिसमें प्रतिपदा पड़ती है, नाम से पुकारे जायेंगे। यदि सौर मास में दो प्रतिपदाएं पड़ जायेंगी तो प्रथम प्रतिपदा से आरम्भ होने वाला चान्द्र मास अधिक या मलमास कहलायेगा और दूसरी प्रतिपदा से आरम्भ होने वाला चान्द्र मास शुद्ध या निज मास कहलायेगा।

3. 13^0 20′ नक्षत्र भाग से चन्द्र के आगे चले जाने या अन्त का क्षण या उससे सूर्य का प्रवेश परिवर्तित अयनांश से गणित किया जायेगा। इस अयनांश का मूल्य (मान) 21 मार्च 1956 में 23^0 15′ 0′′ था। इसके उपरान्त यह क्रमशः बढ़ता गया है जिसका मध्यम मान लगभग 50^0 27′′ है।

4. दिन की गणना अर्धरात्रि से अर्धरात्रि तक होगी (82.5^0 पूर्व रेखांश और 23^0 11′ उत्तरी अक्षांश के मध्य से) किन्तु यह लोक दिन है। धार्मिक उपयोगों में सूर्योदय से ही दिन की गणना होगी।

5. गणनाओं के लिए सूर्य और चन्द्र के रेखांशों का ज्ञान उनकी गतियों के समीकरणों से किया जाय, जिसके निरीक्षित मूल्यों से संगति बैठती रहे।

6. भारतीय पंचांग और नौ (नाविक) पंचांग का निर्माण होते रहना चाहिए, जिससे सूर्य, चन्द्र, ग्रहों तथा अन्य आकाशीय पिण्डों के स्थानों का अग्रिम ज्ञान होता रहे।

उपरोक्त क्रम में काल की इकाइयों के साथ 'युग' के विषय में विचार करने के उपरान्त, उसे पुनः 'युग और महायुग' के सापेक्ष में संक्षेप में निम्न क्रम में विवेचित किया जा सकता है–

1. युग – 'युग' शब्द के कई अर्थ हैं– काल की अल्पावधि , पांच वर्षों का एक वृत्त, दीर्घाविधि और सहस्रों वर्ष की अवधि।

महाभारत, मनु और पुराणों में युगों, मन्वन्तरों और कल्पों के विषय में बहुत कुछ विस्तार से व्याख्यायित है। युग चार हैं – कृत, त्रेता, द्वापर और तिष्य (कलि) और ये चारो भारत से सम्बन्धित माने गये हैं।

आरम्भिक गुप्ताभिलेखों में कृतयुग को महान गुणों के वृत्त से सम्बन्धित माना गया है। कतिपय पुराणों में आया है कि युग सिद्धान्त भारत तक ही सीमित था।

मानव मास पितरों का अहोरात्र (दिन और रात्रि) है, मानव वर्ष दैव अहोरात्र है।

कृतयुग का विस्तार दैवमान से 4000 वर्ष है, इसके पूर्व सन्ध्या 400 वर्ष है, इसके उपरान्त सन्ध्यान्त 400 वर्ष है। शेष तीन – त्रेता, द्वापर और कलियुग क्रम से 3000, 2000 और 1000 दैव वर्ष के हैं; सन्ध्या और सन्ध्यान्त क्रम से है – 600 , 400 और 200 दैव वर्ष।

2. महायुग – चारों युगों (कृत, त्रेता, द्वापर और तिष्य 'कलि') के काल निर्धारण के समायोग को महायुग के रूप में समझा जा सकता है।

इस प्रकार चार युगों का विस्तार 12000 वर्षों (4800 + 3600 + 2400 + 1200) का है, जिसे देवों का युग (दिव्य मानक) कहा गया है; इन चारों के एक हजार वर्ष ब्रह्मा का एक दिन और उतनी ही ब्रह्मा की एक रात्रि है।

(विशेष –1. 12000 दैव वर्षों के 71 युगों में प्रत्येक को मन्वन्तर कहा जाता है। मन्वन्तर असंख्य है, और इसी प्रकार सृष्टियां और प्रलय भी असंख्य है।

विशेष –2. विष्णु पुराण के अनुसार 14 मन्वन्तरों का एक कल्प होता है, जो ब्रह्मा का एक दिन है।

विशेष –3. देवों का एक दिन एक मानव वर्ष है, अतः 12000 वर्षों की चतुर्युगी 43,20,000 मानव वर्ष के बराबर होगी (12000 × 360), जिसे मानुष काल मानक कहा जाता है।)

शतपथ ब्राह्मण काल में ही लोग विशाल वर्ष संख्याओं से परिचित थे। शत0 ब्रा0 में आया है कि एक वर्ष में 10,800 मुहूर्त होते हैं (30 × 360, 30 अहोरात्र का द्योतक है), प्रजापति ने ऋग्वेद की व्यवस्था निम्न प्रकार की है –

इसके अक्षरों की संख्या 12,000 व्याहृतियों (प्रत्येक व्याहृति में 36 अक्षर होते हैं) के बराबर है, अर्थात् कुल अक्षर 4,32,000 हैं; ऐसा भी कहा गया है कि ऋग्वेद में 10,800 पंक्तियां (प्रत्येक पंक्ति में 40 अक्षर हैं, अतः 10,800 × 40 = 4, 32, 000) हैं। प्रजापति ने अन्य दो वेदों की व्यवस्था भी की और तीनों वेदों में 8, 64, 000 अक्षर हैं।

360 यज्ञिय दिनों में 10,800 मुहूर्त होते हैं और मुहूर्त के उपरान्त मुहूर्त पर 80 अक्षरों की वृद्धि होती है, अतः 10,800 × 80 = 8, 64, 000 अक्षर हुए।

(विशेष – पेरिस के 'कलिज दि फ्रांस' के प्रो0 डा0 जीन फिलियोजात ने एक मत प्रकाशित किया है कि – शतपथ में दी हुई उपर्युक्त संख्या वैज्ञानिक है और हेराक्लिट्स ने जो कहा है कि 10,800 मानुष वर्ष 'महान वर्ष' के द्योतक हैं और बेरोसस ने जो यह कहा है कि – महान ज्योतिषीय काल 4, 32, 000 वर्षों का है; तो इन दोनों से 'शतपथ' का कथन बहुत प्राचीन है।)

ब्रह्मा का एक दिन एक कल्प के बराबर है (4,32,0000 × 1000 = 4,32,00,00,000 वर्ष)।

ब्रह्मा के जीवन के 100 वर्ष के 'मानुष वर्ष' जानने के लिए 4,32,00,00,000 को 2 से गुणा और पुनः 360 और 100 से गुणा करना होगा; इस प्रकार ब्रह्मा का एक वर्ष = 31,10,40,00,00,00,000 वर्ष।

(विशेष–1 : यही बात अल्वरुनी 'सची, जिल्द 1, पृ0 332' ने भी कही है।)

कतिपय अतिविज्ञ लोगों ने ब्रह्मा के जीवन को 108 वर्ष माना है। ब्रह्मा अब तक 50 वर्ष के हो चुके हैं और यह उनके जीवन का दूसरा अर्द्धांश है। अब वाराह कल्प और वैवस्वत मन्वन्तर (सातवां) चल रहा है।

(विशेष – 1. अतीत छः मनु हैं – स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुस तथा वर्तमान के मनु हैं – वैवस्वत 'सातवें' (ब्रह्म0 5/4–5, विष्णु0 3/1/6 – 7)।

विशेष – 2. नरसिंह पुराण (24 / 17 – 35) में भावी मनुओं के नाम हैं – सावर्णि, दक्ष सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, धर्म सावर्णिक, रुद्र सावर्णि, रुचि और भौम।

विशेष – 3. ब्रह्म (5 / 5 – 6) में 7 में 4 नाम निम्न हैं – सावर्णि, रैम्य, रौच्य और मेरु सावर्णि।

विशेष – 4. नारदपुराण (1 / 40 / 20 – 23) में 14 मनुओं के नाम आये हैं। इनका क्रम निम्न हो सकता है – स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुस, वैवस्वत, सावर्णि, दक्ष सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, धर्म सावर्णि, रुद्र सावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि।)

विष्णु0 में ऐसा आया है कि कतिपय देव चार युगों तक, कुछ मन्वन्तर तक और कुछ एक कल्प तक रहते हैं (1 / 12 / 93)।

विष्णुधर्म सूत्र (20 / 1 – 15) में मनु के समान ही मन्वन्तरों और कल्पों का उल्लेख है, किन्तु इसमें एक अन्य बात यह भी है कि ब्रह्मा का सम्पूर्ण जीवन पुरुष (विष्णु) के एक दिन के बराबर है और पुरुष की रात्रि भी इतनी ही लम्बी है।

(विशेष – 1:यही मत अल्वरुनी (सची, जिल्द 1, पृ0 332) ने पुलिश सिद्धान्त में भी पाया है।

विशेष – 1: प्रथम स्रष्टि और वर्तमान की यह 14 वीं स्रष्टि के मध्य का व्यापक अन्तराल और 'ब्रह्मा' के अस्तित्व के अन्तराल के मध्य अतिव्यापक समय/काल का अन्तर दिखता है। 'आरम्भिक – वर्तमान' स्रष्टि के अन्तराल और 'ब्रह्मा' के अस्तित्व के 'आरम्भिक – वर्तमान' के अन्तराल के मध्य व्यापक अन्तर को देखते हुए किसी न किसी रूप में अन्तराल की प्रामाणिकता पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है।

अतः यह अन्तराल सम्बन्धी बिन्दु 'धर्म/अध्यात्म' से जुड़े विज्ञजन और आध्यात्मिक शोधकर्ता के लिए नये सिरे से पुनः विचारणीय है।)

पुराणों में प्रलय के चार प्रकार निम्न क्रम में दिये गये हैं –

1.नित्य प्रलय – जो जन्म लेते हैं उनकी प्रतिदिन की मृत्यु।

2.नैमित्तिक प्रलय – जब ब्रह्मा का एक दिन समाप्त होता है, और विश्व का नाश होता है।

3.प्राकृतिक प्रलय – जब प्रत्येक वस्तु प्रकृति में विलीन हो जाती है।

4.आत्यन्तिक प्रलय – मोक्ष, सम्यक ज्ञान से परमात्मा में विलीनता।

कूर्म (2 / 45 / 11 – 59) में उल्लिखित वर्णन का संक्षेप यहां निम्न क्रम में प्रस्तुत है –

जब एक सहस्र चतुर्युगों का अन्त होता है, तो एक सौ वर्षों तक वर्षा नही होती। परिणाम यह होता है कि प्राणी (जीव – जन्तु) मर जाते हैं और पृथिवी में विलीन हो जाते हैं; सूर्य की किरणें असह्य हो जाती हैं; यहां तक कि समुद्र सूख जाते हैं; पर्वतों, वनों और महाद्वीपों के साथ पृथिवी सूर्य की भीषण गर्मी से जलकर राख हो जाती है।

जब सूर्य की किरणें प्रत्येक वस्तु को जलाती गिरती है तो सम्पूर्ण विश्व एक विशाल अग्नि के सदृश लगता है। चल और अचल – सभी वस्तुएं जल उठती हैं।

महासमुद्रों के जन्तु बाहर आकर राख बन जाते हैं। संवर्तक अग्नि प्रचण्ड आंधी से बढ़कर सम्पूर्ण पृथिवी (सृष्टि) को जलाने लगती है और उसकी ज्वालाएं सहस्रों योजन ऊपर उठने लगती हैं; वे गन्धर्वों, पिशाचों, यक्षों, नागों, राक्षसों को जलाने लगती हैं, केवल पृथिवी ही नहीं; प्रत्युत 'भुवः' और 'स्वः' लोक भी जल जाते हैं।

तब कहीं विशाल संवर्तक बादल हाथियों के झुण्डों के समान, विद्युत से चमत्कृत हो आकाश में उठने लगते हैं, कुछ तो नीले कमलों के सदृश, कुछ पीले, कुछ धूमिल, कुछ मोम से लगने लगते हैं और आकाश में छा जाते हैं और अतिवर्षा कर अग्नि बुझाने लगते हैं।

जब अग्नि बुझ जाती है, नाश के बादल सम्पूर्ण लोक को बाढ़ों से घेर लेते हैं; पर्वत छिप जाते हैं, पृथिवी जल से निमग्न हो जाती है और सभी कुछ जलार्णव हो जाता है और तब ब्रह्मा यौगिक निद्रा में आ जाते हैं।

(विशेष – वन0 (272 / 32 – 48) में नैमित्तिक प्रलय का वर्णन है।)

कूर्म0 (1 / 46) और विष्णु0 (6 / 4 / 12 – 49) में प्राकृतिक प्रलय का वर्णन है जो सांख्य के वर्णन के समान है। संक्षेप में इसे निम्न क्रम में व्यक्त किया जा सकता है –

जब अधः लोकों के साथ सभी लोक अनावृष्टि से नष्ट हो जाते हैं और महत् से आगे के सभी प्रभाव नष्ट हो जाते हैं, तो जल सर्वप्रथम गंध को सोख लेता है और जब गन्ध – तन्मात्रा नष्ट हो जाती है, पृथिवी जलमय हो जाती है, जल के विशिष्ट गुण रस – तन्मात्रा का नाश हो जाता है, केवल अग्नि शेष रह जाती है और सम्पूर्ण लोक अग्नि ज्वाला से परिपूर्ण हो जाता है; तब वायु अग्नि को आत्मसात् कर लेता है और रूप – तन्मात्रा का विनाश हो जाता है; वायु सभी 10 दिशाओं को हिला देता है; आकाश वायु के स्पर्श गुण को हर लेता है और केवल आकाश ही शून्य सा पड़ा रहता है और शब्द तन्मात्रा चली आती है।

इस प्रकार सात प्रकृतियां महत् और अहंकार के साथ क्रम से समाप्त हो जाती हैं; यहां तक कि पुरुष और प्रकृति परमात्मा (विष्णु) में विलीन हो जाते हैं। विष्णु का दिन मानुष वर्षों के दो पराधों के बराबर होता है।

कल्प के अन्त में केवल मुनि मार्कण्डेय बचते हैं और प्रलय (या कल्प) के समय तक विष्णु में अवस्थित रहते हैं और फिर उनके मुख से बाहर आ जाते हैं। (भविष्यपर्व, अध्याय – 10 / 12 / 68) ।

ब्रह्म (52 / 12 – 29 और 53 / 55) के अनुसार – कल्पान्त के समय मार्कण्डेय एक वटवृक्ष देखते हैं और रत्न जटित एक शय्या पर पड़े हुए एक बालक (स्वयं विष्णु) को देखते हैं; इसके उपरान्त वे उसमें प्रवेश कर जाते हैं और बाद को बाहर आ जाते हैं। (मत्स्य0 – 167 / 14 – 66)।

भगवत्गीता (8 / 18 – 19) में ब्रह्मा की रात्रि के आगमन पर सभी प्राणियों के बार – बार लय और ब्रह्मा के दिन के आरम्भ पर प्राणियों के पुनरुद्भव की बात आयी है।

(विशेष – मनु (1 / 86) में आया है – 'कृतयुग में तप सर्वोच्च लक्ष्य था, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलि में केवल दान।)

3. युगों, मन्वन्तरों और कल्पों का सिद्धान्त – युगों, मन्वन्तरों और कल्पों के सिद्धान्त को लेकर कई मत – मतान्तर हैं। उनमें कतिपय पूर्व धर्मशास्त्र के लेखकों और ऋषि – मुनि परंपराओं से जुड़े अतिविज्ञों के विचारों को यहां निम्न क्रम में व्यक्त करने का प्रयास किया गया है –

आर्यभट्ट के मत से चारों युगों का विस्तार समान था, न कि 4, 3, 2 और 1 के समानुपात में; उन्होंने कहा है कि – जब वे 23 वर्ष के थे तो तीन युगवाद और 3600 वर्ष व्यतीत हुए थे (कालक्रियापाद, 10)।

ब्रह्मगुप्त (1 /9) ने कहा है कि – यद्यपि आर्यभट्ट ने घोषित किया है कि – कृतयुग आदि युगों के चार पाद बराबर है, किन्तु स्मृतियों में ऐसी बात नहीं पायी जाती।

आर्यभट्ट (दशघटिका श्लोक 3) ने कहा है कि मनु 72 युगों की एक अवधि है, किन्तु अन्य स्मृतियों और पुराणों ने मन्वन्तर को 71 युग माना है।

(विशेष – आर्यभट्ट ने यह भी कहा है कि ब्रह्मा का दिन 1008 चतुर्युगों के बराबर है (ब्रह्मव्युप्त 1 / 12)।)

भास्कराचार्य ने अधैर्य के साथ कहा है – 'कुछ लोगों का कथन है कि ब्रह्मा का अर्द्ध जीवन (अर्थात् 50 वर्ष) समाप्त हो चुका है, किन्तु कुछ लोगों के मत से 58 वर्ष व्यतीत हुए हैं। चाहे जो सत्य परम्परा हो, इसका कोई उपयोग नहीं है, ब्रह्मा के चालू दिन में जो दिन व्यतीत हो चुके हैं, उन्हीं में ग्रहों की स्थितियों को रखना है।'

ऋग्वेद में 1 से 10 तक के अंकों का बहुधा उल्लेख है। सहस्र और अयुत (10 सहस्र) भी उल्लिखित है (ऋ0 4 / 26 / 7, 8 / 1 / 5 और 8 / 21 / 18)।

तै0 सं0 (4 / 4 / 11 / 3 – 4) में ईंटों की संख्याएं आयी है; यथा – 1, 100, 1000, अयुत (10000), नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, समुद्र, मध्य, अन्त और परार्ध।

विष्णुपुराण (6 / 3 / 4 – 5) के मत से परार्ध एक से आगे का 18 वां क्रम है, और प्रत्येक क्रम अपने से पूर्व के क्रम से दस गुना है। भारत में कई शतियों से प्रयुक्त 18 क्रमों की तालिका निम्न ढंग से है –

क्रम संख्या	अंकों का विवरण	अनुमानित संख्या
1.	एक	1
	दश	10
	शत	100

	सहस्र	1000
	अयुत	10000
	लक्ष	100000
	प्रयुत	1000000
	कोटि	10000000
	अर्बुद	100000000
	अब्ज या पदम्	1000000000
	खर्व	10000000000
	निखर्व	100000000000
	महापदम्	1000000000000
	शंकु	10000000000000
	जलधि या समुद्र	100000000000000
	अन्त्य	1000000000000000
	मध्य	10000000000000000
	परार्ध	100000000000000000

उपरोक्त संख्याओं के आधार पर सृष्टि के स्थाई / अस्थाई मानकों को एक सीमा तक मापने का दुस्साहस किया जा सकता है।

0